

शब्द-शक्ति - 11

परिभाषा:- किसी भी शब्द में अन्तर्निहित अर्थ को प्रकट करने वाले व्यापार को शब्द शक्ति कहते हैं। प्रत्येक शब्द में वक्ता के वास्तविक अर्थ को व्यक्त करने का जो गुण होता है, वह शब्द शक्ति के कारण ही होता है।

कवि शिरोमणि आचार्य चिंतामणि ने शब्द व अर्थ को परिभाषित करते हुए लिखा है- "जो सुनि परे सो शब्द है, समझि परे सो अर्थ" अर्थात् जो सुन पड़े वही शब्द है तथा उससे जो समझ में आवे, वही अर्थ है।

सामान्यतः शब्द का कोई निश्चित और नित्य अर्थ नहीं होता है। अर्थ का निर्धारण अनेक बातों के आधार पर होता है। 'वक्ता', 'श्रोता', 'देश', 'काल', 'चेष्टा', 'अन्य सन्निधि (तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति)', 'प्रकरण (बोलने का प्रसंग)' इन सभी बातों को ध्यान में रखकर अर्थ ग्रहण किया जाता है।

शब्द की शक्ति असीम होती है। शब्द उच्चारण के साथ ही हमारे मन, कल्पना और अनुभूति पर प्रभाव डालने लगता है। जैसे- 'अचार' या 'चटनी' का नाम लेते ही हमारे मुख में पानी भर आता है एवं 'भूत' या 'साँप' का नाम सुनते ही मन में भय का संचार होने लगता है। यह प्रभाव अर्थगत होता है। अतः हम कह सकते हैं कि जिस शक्ति के द्वारा शब्द का यह अर्थगत प्रभाव पड़ता है, उसे ही शब्द-शक्ति कहते हैं अर्थात् शब्द का अर्थ-बोध कराने वाली शक्ति ही शब्द-शक्ति कहलाती है।

शब्द शक्ति के भेद- अर्थ के आधार पर काव्य में शब्द तीन प्रकार के माने जाते हैं-

(i) वाचक (ii) लक्षक और (iii) व्यञ्जक

इन तीनों शब्दों के आधार पर शब्द शक्ति के भी निम्न तीन भेद माने जाते हैं-

1. अभिधा शब्द शक्ति 2. लक्षणा शब्द शक्ति 3. व्यञ्जना शब्द शक्ति

1. अभिधा शब्द शक्ति

"अनेकार्थक हू सबद में, एक अर्थ की भक्ति।

तिहि वाच्यारथ को कहे, सज्जन अभिधा शक्ति ॥"

वाक्य या कविता में प्रयोग किये जाने पर जब कोई शब्द अपने मुख्य अर्थ को, लोक प्रसिद्ध अर्थ को, शब्दकोशीय अर्थ को, साक्षात् संकेतित अर्थ को प्रकट करता है तो उसे वाचक शब्द कहते हैं; उसके द्वारा प्रकट होने वाले अर्थ को साक्षात् संकेतितार्थ, वाच्यार्थ, मुख्यार्थ या अभिधेयार्थ कहते हैं तथा उस शब्द की शक्ति को अभिधा शब्द शक्ति कहते हैं। मुख्य अथवा प्रथम अर्थ प्रकट करने के कारण अभिधा शब्द शक्ति को मुख्या शक्ति या अग्रिमा शक्ति भी कहा जाता है। अभिधा शब्द शक्ति से जिन शब्दों का अर्थ बोध होता है; वे तीन प्रकार के होते हैं:-

(i) रूढ़ (ii) यौगिक (iii) योगरूढ़

जैसे:-

1. गधा रेंकता है। (अपने मुख्यार्थ 'जानवर' के लिए प्रयुक्त होने के कारण)
2. गाय घास खाती है। (अपने मुख्यार्थ 'जानवर' के लिए प्रयुक्त होने के कारण)
3. हरि पुस्तक पढ़ रहा है। 4. हरि ने नारद को हरि रूप दिया।

नोट:- शब्दकोश में 'हरि' शब्द के अनेक अर्थ प्राप्त होते हैं। उनमें से यहाँ प्रथम 'हरि' शब्द का अर्थ 'विष्णु' एवं द्वितीय 'हरि' शब्द का अर्थ 'बंदर' ग्रहण करने पर वाक्य का पूर्ण भाव स्पष्ट हो जाता है; अतः यहाँ 'अभिधा' शब्द शक्ति है।

5. "परम रम्य आराम यह जो रामहिं सुख देत।"

शब्दकोश के आधार पर यहाँ 'आराम' शब्द का अर्थ 'बगीचा' ग्रहण किया जाता है। अतः शब्दकोशीय अर्थ प्रकट होने के कारण यहाँ अभिधा शब्द शक्ति मानी जाती है।

विशेष तथ्य- जब किसी पद में 'यमक' अलंकार की प्राप्ति होती है तो वहाँ प्रायः अभिधा शब्द शक्ति होती है। जैसे-

1. कनक-कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।

वा खाये बौराय जग, वा पाये बौराय॥

2. सारंग ले सारंग उड्यो सारंग पूग्यो आय।

जे सारंग सारंग कहे, मुख को सारंग जाय।

कभी-कभी 'उत्प्रेक्षा' अलंकार के पदों में भी उनका मुख्य अर्थ ही प्रकट होता है, अतः इस अलंकार के पदों में भी प्रायः (सदैव नहीं) अभिधा शब्द शक्ति होती है। जैसे-

1. सोहत ओढ़े पीत पट, स्याम सलोने गात।

मानहु नीलमणि सैल पर, आतप पर्यो प्रभात॥

2. कहती हुई यों उत्तरा के नेत्र जल से भर गये।

हिम के कणों से पूर्ण मानो हो गये पंकज नये॥

3. भजन कह्यो तातै भज्यौ, भज्यौ न एको बार।

दूर भजन जाते कह्यौ, सो तू भज्यो गवार॥

आचार्य भट्टनायक अभिधा शब्द शक्ति को विशेष महत्त्व देते हैं। उनकी दृष्टि से रस की अनुभूति कराने में अभिधा शब्द शक्ति ही प्रधान है। अभिधा के द्वारा ही पहले अर्थबोध होता है और उसके बाद भावकत्व के द्वारा साधारणीकरण और भोजकत्व के द्वारा रसास्वादन होता है।

रीतिकालीन आचार्य देवकवि ने भी अभिधा शब्द शक्ति की प्रशंसा करते हुए लिखा है-

"अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षणालीन।

अधम व्यंजना रस विरस, उलटी कहत प्रवीन॥"

2. लक्षणा शब्द शक्ति

"मुख्यार्थबाधे तद्योगे रुढितोऽथ प्रयोजनात्।

अन्याऽर्थो लक्ष्यते तत्र लक्षणा रोपिता क्रिया॥"

अर्थात् वाक्य या कविता में प्रयुक्त किसी शब्द का मुख्य अर्थ, लोक प्रसिद्ध अर्थ अथवा शब्द कोशीय अर्थ ग्रहण करने पर कोई न कोई बाधा उत्पन्न होती है एवं इसके बाद उस शब्द से संबंधित कोई अन्य अर्थ ग्रहण करने पर वाक्य का पूर्ण भाव स्पष्ट हो जाता है तो वहाँ वह शब्द लक्षक शब्द कहलाता है, उसके द्वारा प्रकटित अर्थ लक्ष्यार्थ या आरोपितार्थ कहलाता है एवं उस शब्द की शक्ति को लक्षणा शब्द शक्ति कहते हैं। जैसे:-

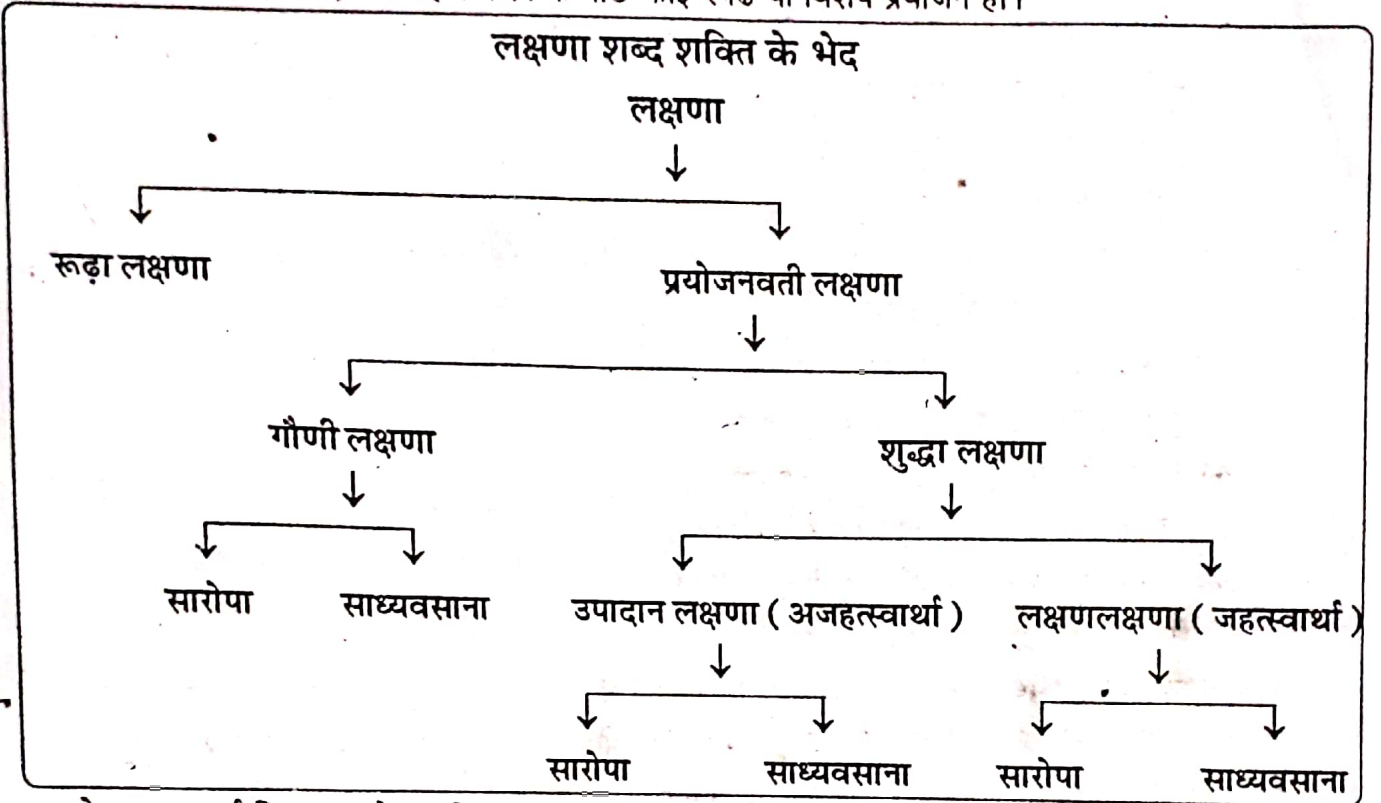
1. मोहन गधा है।

2. राधा तो निरी गाय है।

उपर्युक्त वाक्यों में प्रयुक्त 'गधा' व 'गाय' शब्दों को सुनकर/पढ़कर अर्थग्रहण में बाधा उत्पन्न होती है, तब हम इससे संबंधित अन्य अर्थ (क्रमशः मूर्ख व सीधी-सादी) ग्रहण करते हैं तो इनका पूर्ण भाव स्पष्ट हो जाता है, अतः अन्य अर्थ प्रकट होने के कारण यहाँ लक्षणा शब्द शक्ति मानी जाती है।

लक्षणा शब्द शक्ति के लिए आवश्यक तीन बातें:-

- शब्द के मुख्य अर्थ में बाधा पड़े।
- शब्द के मुख्य अर्थ से संबंधित कोई अन्य अर्थ लिया जाये।
- उस अन्य अर्थ (लक्ष्यार्थ) को ग्रहण करने के पीछे कोई रूढ़ि या विशेष प्रयोजन हो।



नोट:- आचार्य विश्वनाथ ने स्वरचित 'साहित्यदर्पण' रचना में लक्षणा के अस्सी भेद स्वीकार किये हैं।

- रूढ़ा लक्षणा:-** जब किसी रूढ़ि या प्रचलन के कारण मुख्यार्थ को छोड़कर कोई अन्य अर्थ ग्रहण किया जाता है, तब वहाँ रूढ़ा लक्षणा मानी जाती है। इसे रूढ़ि लक्षणा, रूढ़िमती लक्षणा अथवा रूढ़िमूला लक्षणा भी कहते हैं। जैसे- 'राजस्थान वीर है।'

प्रस्तुत वाक्य में 'राजस्थान' का मुख्यार्थ है- राजस्थान राज्य। परन्तु यहाँ इस अर्थ की बाधा है क्योंकि राजस्थान तो जड़ है, वह वीर कैसे हो सकता है? इस स्थिति में इसका यह लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाता है- 'राजस्थान के लोग वीर हैं।' यह अर्थ आधार-आधेय सम्बन्ध की दृष्टि से लिया जाता है। यहाँ 'राजस्थान राज्य' आधार है तथा 'राजस्थान के लोग' - आधेय है। यह अर्थ ग्रहण करने में रूढ़ि कारण है। राजस्थान के लोगों को राजस्थान कहने की रूढ़ि है। अतएव यहाँ 'रूढ़ा-लक्षणा' शब्द शक्ति मानी जाती है।

अन्य उदाहरण-

- महाराष्ट्र साहसी है।
- पंजाब शेर है।
- यह तैल शीतकाल में उपयोगी है।
- मुँह पर ताला लगा लो।
- मोहन सितार बजाने में कुशल है।
- दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परत गाँठ दुरजन हिये, दर्ई नई यह रीति॥
- भाग जग्यो उमगो उर आली, उदै भयो है अनुराग हमारो।

(ii) **प्रयोजनवती लक्षणा:-** जहाँ मुख्यार्थ में बाधा उत्पन्न होने पर मुख्यार्थ से संबंधित अन्य अर्थ किसी प्रयोजन की सिद्धि के लिए लिया जाता है तो वहाँ प्रयोजनवती लक्षणा मानी जाती है। जैसे-

‘श्वेत दौड़ रहा है।’

प्रस्तुत वाक्य में ‘श्वेत’ का मुख्यार्थ ‘सफेद रंग’ बाधित है क्योंकि वह दौड़ कैसे सकता है। तथा इसका लक्ष्यार्थ है- ‘श्वेत रंग का घोड़ा दौड़ रहा है।’ अर्थात् किसी घुड़दौड़ प्रतियोगिता के दौरान यह वाक्य बोला जाता है तो श्रोता इसका यह अर्थ ग्रहण कर लेता है कि ‘सफेद रंग का घोड़ा दौड़ रहा है।’ इस प्रकार किसी प्रयोजन विशेष (घुड़दौड़) से यह अर्थ ग्रहण करने के कारण यहाँ प्रयोजनवती लक्षणा है।

अन्य उदाहरण-

1. भाले प्रवेश कर रहे हैं। (युद्धभूमि में ‘भालेधारी सैनिक’ प्रवेश कर रहे हैं।)
2. ‘गंगा पर ग्राम है।’ या ‘साधु गंगा में बसता है।’
3. उदित उदयगिरि मंच पर, रघुवर बाल पतंग।
विकसे संत सरोज सब, हरषे लोचन भृंग।।
4. वह स्त्री तो गंगा है।

(iii) **गौणी लक्षणा-** लक्षणा शब्द शक्ति में लक्ष्यार्थ सदैव मुख्यार्थ से सम्बद्ध होता है। यथा-

- | | | | |
|------------------------|----------------------|-----------------------|---------------------|
| (i) सादृश्य संबंध | (ii) आधाराधेय संबंध | (iii) सामीप्य संबंध | (iv) वैपरीत्य संबंध |
| (v) तात्कर्म्य सम्बन्ध | (vi) कार्यकारण संबंध | (vii) अंगांगि सम्बन्ध | |

इनमें से जहाँ पर मुख्य अर्थ की बाधा उत्पन्न होने पर सादृश्य संबंध के आधार पर अर्थात् समान रूप, गुण या धर्म के द्वारा अन्य अर्थ ग्रहण किया जाता है तो वहाँ पर गौणी लक्षणा होती है।

सामान्यतः रूपक व लुप्तोपमा (धर्म लुप्ता) अलंकार के पदों में गौणी लक्षणा ही होती है। जैसे-

‘मुख चन्द्र है।’

यहाँ मुख्यार्थ में यह बाधा है कि ‘मुख चन्द्र कैसे हो सकता है।’ तब लक्ष्यार्थ यह लिया जाता है कि ‘मुख चन्द्रमा जैसा सुन्दर है।’ यह अर्थ सादृश्य संबंध के कारण लिया जाता है अतः यहाँ गौणी लक्षणा है।

अन्य उदाहरण-

1. नारी कुमुदिनी अवध सर रघुवर विरह दिनेश।
अस्त भये प्रमुदित भई, निरखि राम राकेश।।
2. बीती विभावरी जागरी।
अम्बर पनघट में डूबी रही तारा घट उषा नागरी।

(iv) **शुद्धा लक्षणा-** जब किसी पद में मुख्यार्थ की बाधा होने पर सादृश्य के अतिरिक्त अन्य संबंधों के द्वारा उसे ग्रहण किया जाता है तो वहाँ शुद्धा लक्षणा मानी जाती है। जैसे-

1. मेरे सिर पर क्यों बैठते हो। (सामीप्य संबंध)
2. पानी में घर बनाया है तो सदीं लगेगी ही। (सामीप्य संबंध)
3. आँचल में है दूध और आँखों में पानी। (सामीप्य संबंध)
4. वह मेरे लिए राजा है। (तात्कर्म्य संबंध)
5. इस घर में नौकर मालिक है। (तात्कर्म्य संबंध)

2. ये झंडे कहाँ जा रहे हैं?

इस वाक्य में झण्डा धारण करने वाले पुरुषों पर झण्डे का आरोप है और अर्थ में दोनों का कथन हो रहा है, अतः सारोप लक्षणा है। धार्य-धारक भाव से अर्थ की अभिव्यक्ति हो रही है, अतः शुद्धा लक्षणा है तथा 'झण्डे' का अपना मुख्य अर्थ लुप्त नहीं हुआ है, अतः उपादान लक्षणा है।

नोट:- जहाँ भेदकातिशयोक्ति अलंकार होता है, वहाँ प्रायः उपादान लक्षणा ही कार्य करती है। जैसे-

1. और कछु चितवनि चलनि, और मृदु मुसकानि।

और कछु सुख देत है, सकै न बैन बखानि॥

2. और भीति कुंजन में गुंजरत भौर भीर।

और भीति बौरन के झौरन के हवै गये॥

(viii) लक्षण-लक्षणा (जहत्स्वार्था लक्षणा)

जब किसी शब्द का लाक्षणिक अर्थ ग्रहण करते समय उसका मुख्य अर्थ पूर्णतः लुप्त हो जाता है (छूट जाता है) तो वहाँ लक्षण-लक्षणा शब्द शक्ति मानी जाती है। जैसे-

1. कच समेटि करि भुज उलटि खए सीस पट डारि।

काको मन बाँधे न यह जूरौ बाँधन हारि॥

बिहारी द्वारा रचित प्रस्तुत पद में जूड़ा बाँधती हुई नायिका का चित्रण किया गया है। इसमें 'मन बाँधे' शब्द के मुख्यार्थ में बाधा उत्पन्न होती है, क्योंकि मन को कैसे बाँधा जा सकता है? तब यहाँ 'बाँधना' का अर्थ 'वशीभूत करना या आकर्षित करना' ग्रहण कर लिया जाता है। यहाँ लाक्षणिक अर्थ ग्रहण करने पर 'बाँधे' का अपना मूल अर्थ पूर्णतः लुप्त हो रहा है, अतः यहाँ लक्षण-लक्षणा शब्द शक्ति है।

2. आज भुजंगों से बैठे हैं, वे कंचन के घड़े दबाये।

विनय हार कर कहती है, ये विषधर हटते नहीं हटायें॥

प्रस्तुत पद में 'विषधर' शब्द 'पूँजीपति' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'पूँजीपति' पर 'विषधर' का आरोपण किया गया है, अतः सारोपा लक्षणा है। 'विषधर' अपना अर्थ पूर्णतः छोड़कर 'पूँजीपति' अर्थ को प्रकट कर रहा है, अतः लक्षण-लक्षणा है। काटना, दुःख देना, इन दोनों का ही कर्म है, इसलिए तात्कर्म्य सम्बन्ध होने से यहाँ शुद्धा लक्षणा है।

3. क्या कहना है, आप तो पूरे पंडित हैं। (मूर्ख)

3. व्यंजना शब्द शक्ति

जब किसी शब्द के अभिप्रेत अर्थ का बोध न तो मुख्यार्थ से होता है और न ही लक्ष्यार्थ से, अपितु कथन के सन्दर्भ के अनुसार अलग-अलग अर्थ से या व्यंग्यार्थ से प्रकट होता हो वहाँ वह शब्द व्यंजक शब्द कहलाता है, उसके द्वारा प्रकटित अर्थ व्यंग्यार्थ या ध्वन्यार्थ कहलाता है तथा उस शब्द की शक्ति को व्यंजना शब्द शक्ति कहते हैं।

इस शब्द शक्ति को ध्वन्यार्थ इसलिए कहा जाता है कि इसमें अर्थ ध्वनित होता है। जैसे- घटे पर चोट लगने पर पहले जोर की टंकार होती है, उसके बाद उसमें से मंद-मंद झंकार निकलती है जो देर तक गूँजती रहती है। उसी प्रकार इस शब्द शक्ति में भी शब्द से पहले मुख्यार्थ का बोध होता है और उसके बाद वक्ता, श्रोता और सन्दर्भ-भेद से अन्य अनेक अर्थ ध्वनित होते हैं। जैसे-

1. सूरज डूब गया।

2. पुजारी ने कहा, "अरे! सन्ध्या हो गयी।"

इन वाक्यों को जो कोई भी व्यक्ति सुनेगा, उसे सन्ध्या को क्या कार्य करना है, उसी सन्दर्भ में अर्थ ग्रहण करेगा। पुजारी पूजा करने हेतु, किसान घर लौटने हेतु तथा गृहिणी रसोई बनाने हेतु इसका अर्थ ग्रहण कर सकती है। अतः एक ही

वाक्य का वाच्यार्थ या मुख्यार्थ एक ही रहने पर भी अलग-अलग लोगों के द्वारा अलग-अलग भावार्थ लगा लिये जाने के कारण यहाँ व्यंजना शब्द शक्ति मानी जाती है।

व्यंजना शब्द शक्ति के भेद:- व्यंजना के मुख्यतः दो भेद माने जाते हैं-

1. शाब्दी व्यंजना

2. आर्थी व्यंजना

- (i) **शाब्दी व्यंजना:-** जब किसी वाक्य या पद में किसी शब्द विशेष के कारण ही व्यंजना का प्रभाव बना रहता है अर्थात् उस शब्द के स्थान पर उसका अन्य कोई पर्यायवाची शब्द रख देने से यदि व्यंजना का प्रभाव नष्ट हो जाता है तो वहाँ शाब्दी व्यंजना शब्द शक्ति मानी जाती है। सामान्यतः श्लेष अलंकार युक्त पदों में शाब्दी व्यंजना ही कार्य करती है जैसे-

“भयो अपत कै कोप युत, कै बौरे यहि काल।

मालिनि आज कहै न क्यों, या रसाल को हाल॥”

प्रस्तुत दोहे में कोई नायिका किसी बगीचे की मालिन से पूछ रही है- उस रसाल (आम) का हाल आज क्यों नहीं बता रही हो? वह बिना पत्तों वाला क्यों हो गया है? या उसमें कोंपलें निकल आई हैं? या इस समय उसमें बौर निकल आये हैं।

यहाँ ‘अपत’, ‘कोप’, ‘बौरे’, ‘रसाल’ ये चार शब्द अनेकर्थी हैं, किन्तु इनका अर्थ बगीचे के सन्दर्भ के कारण आम्र वृक्ष के विषय में सीमित कर दिया गया है। फिर भी इसका दूसरा अर्थ निम्नानुसार व्यंजित हो रहा है- “हे मालिन! उस रसिक नायक (रसाल) का हाल क्यों नहीं बता रही हो? क्या वह आज प्रतिष्ठाहीन (अपत) हो गया है। या कुपित हो गया है (कोपयुत) या पागल (बौरा) हो गया है?”

यहाँ द्वितीय अर्थ व्यंजित है तथा शब्दों की प्रधानता है। यदि हम ‘रसाल’, ‘अपत’, ‘कोप’, ‘बौरो’ शब्दों के स्थान पर इनके पर्यायवाची रख दें; तो व्यंजित अर्थ ग्रहण नहीं होगा। अतएव यहाँ शाब्दी व्यंजना मानी जाती है।

शाब्दीव्यंजना के उपभेद:- शाब्दी व्यंजना के भी पुनः दो उपभेद कर दिये जाते हैं-

1. अभिधामूला शाब्दी व्यंजना

2. लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना

1. **अभिधामूला शाब्दी व्यंजना-** जब किसी पद में अभिधा शब्द शक्ति के द्वारा अनेकार्थी शब्दों का एक अर्थ निश्चित कर दिये जाने पर भी व्यंजित अर्थ प्रकट होता है, वहाँ अभिधामूला शाब्दी व्यंजना मानी जाती है। जैसे-

“चिरजीवो जोरी जुरै, क्यों न सनेह गंभीर।

को घटि, ये वृषभानुजा, वे हलधर के बीर॥”

यहाँ पर अभिधा शब्द शक्ति के द्वारा ‘वृषभानुजा’ और ‘हलधर के बीर’ का अर्थ क्रमशः ‘राधा’ और ‘कृष्ण’ निश्चित हो जाता है, फिर भी यहाँ यह अर्थ व्यंजित होता है कि यह जोड़ी बिलकुल एक दूसरे के उपयुक्त है। अतएव यहाँ अभिधामूला शाब्दी व्यंजना है।

2. **लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना-** जहाँ पर मुख्यार्थ की बाधा उत्पन्न होने पर लक्षणा शब्द शक्ति के द्वारा अन्य अर्थ प्रकट होता है तथा उसके बाद भी दूसरा अर्थ (व्यंग्यार्थ) प्राप्त होता है तो वहाँ लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना मानी जाती है। जैसे-

1. “कहि न सको तव सुजनता! अति कीन्हों उपकार।

सखे! करत यों रहु सुखी जीवहु बरस हजार॥”

प्रस्तुत दोहे में अपकार करने वाले व्यक्ति के कार्यों से दुःखी कोई व्यक्ति कह रहा है- “मैं तुम्हारी सज्जनता का वर्णन नहीं कर सकता। तुमने बहुत उपकार किया। इसी प्रकार उपकार करते हुए तुम हजार वर्ष तक सुखी रहो।”

यहाँ वाच्यार्थ में अपकारी की प्रशंसा की गई है; परन्तु अपकारी की कभी प्रशंसा नहीं की जा सकती है, अतः वाच्यार्थ

में बाधा है। यहाँ इस वाच्यार्थ को तिरस्कृत करके विपरीत लक्षणा से 'सुजनता' का 'दुर्जनता', 'उपकार' का 'अपकार' और 'सखे' का 'शत्रु' अर्थ लिया जायेगा। यहाँ व्यंग्यार्थ 'अत्यन्त अपकार' है। अतएव यहाँ लक्षणामूला शाब्दी व्यंजन है।

2. फली सकल मन कामना, लूट्यो अगनित चैन।

आजु अँचै हरि रूप सखि, भये प्रफुल्लित नैन॥

3. अजौ त्रयौना ही रह्यौ श्रुति सेवत इक अंग।

नाक बास बेमरि लह्यौ बसि मुकतनु के संग॥

(ii) **आर्थी व्यंजना:-** जब किसी पद में व्यंजना का प्रभाव शब्द पर निर्भर नहीं होकर के अर्थ पर निर्भर रहता है अर्थात् उस शब्द विशेष के स्थान पर उसका अन्य कोई पर्यायवाची शब्द रख दिये जाने पर भी व्यंजना का प्रभाव बना रहता है तो वहाँ आर्थी व्यंजना मानी जाती है। जैसे-

1. "प्रीतम की यह रीति सखी, मोपै कही न जाय।

झिझकत हू ढिंग ही रहत, पल न वियोग सुहाय॥"

यह कथन किसी नायिका का है। व्यंग्यार्थ यह है कि नायिका रूपवती है, नायक उसमें अत्यधिक आसक्त है। यहाँ आर्थी व्यंजना इसलिए है कि 'झिझकत', 'ढिंग' आदि शब्दों के स्थान पर इनके पर्यायवाची अन्य शब्द भी रख दिये जायें तो भी व्यंग्यार्थ बना रहेगा।

2. "सागर कूल मीन तड़पत है हुलसि होत जल पीन।"

यह कथन सामान्यतः कोई महत्त्व नहीं रखता, परन्तु जब इस बात का पता चल जाता है कि इसको कहने वाली गोपिकाएँ हैं, तब इसका यह अर्थ निकलता है कि हम कृष्ण के समीप होते हुए भी मछली के समान तड़प रही हैं। कृष्ण के दर्शन से हमें वैसा ही आनंद प्राप्त होगा, जैसा कि मछली को पानी में जाने से होता है।

3. सघन कुंज छाया सुखद शीतल मंद समीर।

मन हवै जात अजौ वहे वा जमुना के तीर॥

4. सिंधु सेज पर धरा वधू अब, तनिक संकुचित बैठी सी।

प्रलय निशा की हलचल स्मृति में मान किए सी ऐंठी सी॥

शब्द शक्तियों का तुलनात्मक विवरण

अभिधा	लक्षणा	व्यंजना
1. अभिधा में केवल मुख्य अर्थ अथवा लोक प्रसिद्ध अर्थ प्रकट होता है।	1. लक्षणा में शब्द के मुख्यार्थ से हटकर उसी के लक्षण के आधार पर अन्य अर्थ निकाला जाता है।	1. मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ से भिन्न कोई अन्य अर्थ प्रकट होता है।
2. इसका अर्थ निश्चित होता है कोई कल्पना का प्रयोग नहीं होता है।	2. अर्थ निश्चित नहीं होता है, किंतु अर्थ की दिशा निश्चित होती है अर्थात् लक्षण के आधार पर अर्थ निकाला जाता है।	2. सन्दर्भ/प्रसंग के आधार पर अर्थ का स्वरूप तय होता है। कल्पना का सहारा लेना पड़ता है।
3. इसके लिए किसी अन्य शक्ति की आवश्यकता नहीं पड़ती है।	3. लक्ष्यार्थ निकालने में अभिधा शक्ति की आवश्यकता पड़ती है।	3. अभिधा व लक्षणा दोनों की आवश्यकता पड़ती है।
4. इसमें पाठक या श्रोता वास्तविक अर्थ ग्रहण करता है।	4. मुख्यार्थ से परे लक्षणानुसार अपनी कल्पना और तर्क से अभीष्ट अर्थ तक पहुँचता है।	4. इसमें संकेत भर होता है। बाकी समस्त अर्थ पाठक/श्रोता प्रसंग के आधार पर ग्रहण करता है।